हमारी बात

मुस्लिम महिलाओं के लिए लैंगिक इंसाफ़

मेरे दोस्तों को हैरत होती है कि मैं न सिर्फ़ इस्लाम में विश्वास करती हूं बल्कि सभी मज़हबी रवायतों का पालन करने वाली महिला हूं। मुझे 'वहदानियत' यानी एक अल्लाह की मौजूदगी में यकीन है। सवेरे उठकर सबसे पहले नमाज़ पढ़ती हूं और रात को सोने से पहले भी। रमजान में रोज़े रखती हूं। पर यह सब इसलिए नहीं करती कि मेरी पैदाइश एक मुसलमान परिवार में हुई बल्कि इसलिए क्योंकि पिछले चालीस सालों में मुझे इसकी अहमियत और अधिक महसूस हुई है। हालांकि नमाज़ अदा करना मेरी परवरिश में शामिल था पर इस्लाम के अंतर्गत औरतों के लिए हकूक व न्याय की तलाश मैंने बाईस साल पहले ही शुरू की, जब सड़सठ वर्षीय शाहबानो ने पहली दफा यह सवाल उठाया। पर आईये आज बात शुरूआत से करते हैं।

मेरा जन्म एक मध्यमवर्गीय मुसलमान परिवार में हुआ, अपने माता-पिता की मैं चौथी संतान थी। मेरी पैदाइश पर मेरे वालिद बहुत खुश थे परन्तु पड़ोसी अफसोस ज़ाहिर करने चले आए थे। यह किस्सा मेरे जन्म के समय मौजूद रिश्तेदार बार-बार दोहराते थे। मेरे वालिद के पूर्वज नामी समाज सुधारकों में से थे जो औरतों की तालीम, सम्पत्ति अधिकार और आज़ाद-ख्याली के कायल थे। करीबन एक सदी पहले मेरे दादाजान ने औरतों के दर्जे पर कविताएं व नज़्में लिखी थीं जिनमें उन्होंने कहा था कि "दुनिया की ज़ीनत तुमसे है"। दादाजान ने अपनी पांच साल की पोती, मेरे पिता की सबसे छोटी बहन के लिए भी एक खास कविता लिखी थी जिसमें उन्हें "सबकी आंखों का तारा" बताया गया था। चूंकि मेरा नाम मेरी फूफीजान के नाम पर रखा गया था मैं कई सालों तक यही सोचती रही कि वह नज़्म मेरी शान में अर्ज़ गई थी।

इस रवायत में पलती-बढ़ती मैं लैंगिक न्याय और मुस्लिम पर्सनल लॉ को समझने की कोशिश करने लगी। मैंने अनेक निकाहनामे पढ़े और उन्हें कुरान में दर्ज निकाह की आयतों के साथ मिलाया। देश की मुसलमान बस्तियों और इलाकों में जाकर औरतों की व्यक्तिगत त्रासदियों और ज़िंदगीनामों की समझ बनाई। ज़्यादातर औरतों ने 'तेहरा' तलाक, बहुविवाह, मेहर व गुज़ारा भत्ता जैसी सुविधाओं की कमी की बातें मुझसे बांटी। मैंने खुद भी अनेकों दफा सूरा अल-निसा व सूरा अल-बकारा को पढ़ा जिससे कुरान की पुख्ता समझ बन सके। मुझे तकलीफ हुई कि पंद्रह सौ वर्ष पहले प्रकट हुई सच्चाई क्या थी और हम मुसलमानों ने उस पाक प्रकटन का क्या हश्र कर दिया है।

सबसे पहले मैंने निकाहनामों पर गौर किया। यह शब्द अपने आप में बरगलाने करने वाला है। 'नामा' के मायने हैं— संदेश। पर शीर्षक से यह कहीं साफ नहीं होता कि निकाह दो व्यक्तियों के बीच कानूनी अनुबंध होता है। इस अनुबंध में कोई मज़हबी रिवाज जुड़ा नहीं होता जैसा हिन्दू, सिख या ईसाई विवाह में होता है। इस अनुबंध का सही शीर्षक है- मुहाईदा-ए-निकाह जिसमें मुहाईदा का अर्थ है अनुबंध। अनुबंध में दोनों पक्षों को कुछ-कुछ शर्तें लगाने का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए एक औरत अपने अनुबंध में घर की साझी ज़िम्मेदारी उठाने या एक ही विवाह करने की शर्त रखवा सकती है। कुरान के अनुसार अनुबंध में दर्ज शर्तें वाजिब होनी चाहिए। एक अन्य बात जो अनुबंध में अहम है वह है मेहर की रकम का दर्ज होना। इसे छोड़ा नहीं जा सकता। खुद पैगम्बर साहब ने भी इस शर्त

का पालन अपने दामाद अली व बेटी फातिमा के निकाह में किया था और अली को अपनी इकलौती मिल्कियत लौह कवच को बेचकर रकमे-मेहर अदा करनी पड़ी थी।

यह हम मुस्लिमों के लिए एक शर्म और अफसोस की बात है कि मेहर की रकम के अलावा हमारे निकाह अनुबंध एकदम कोरे होते हैं। मेरे अपने निकाह अनुबंध में यही लिखा है- पचास हज़ार मेहर की रकम के बदले यह निकाह तय किया जाता है।

मेहर की रकम पेशगी के तौर पर निकाह के वक्त अदा की जानी चाहिए। इसे नान-ओ-नक्फा या गुज़ारे की रकम जो तलाक होने पर अदा की जाती है से अलग रखकर देखा जाना चाहिए। शाहबानो मामले में यही अहम मुद्दा था। पर पितृसत्तात्मक नज़रिये ने इस विरोधाभास को और बढ़ावा दिया है। आम विचार यह है कि मेहर की रकम की अदायगी तलाक होने पर की जानी चाहिए। परन्तु यह सही नहीं है। मेहर की रकम निकाह के वक्त अदा की जानी चाहिए। हां औरत अगर चाहे तो उसकी अदायगी मुल्तवी ज़रूर कर सकती है।

चूंकि इस्लामी विवाह एक अनुबंध है, लिहाज़ा यह लाज़िमी है कि निकाह के समय ही तलाक की बात भी की जाए। मेरे लिए कुरान में लिखा यह सबसे व्यावहारिक पहलू है। किसी शुभ मुहूर्त पर तलाक जैसी अशुभ बात करना समाज की रवायतों के ख़िलाफ़ ज़रूर जाता है पर इस्लाम ने इसे एक बेहद अहम दर्जा प्रदान करके निकाह के समय इसका ज़िक्र वाजिब ठहराया है। एक औरत अपने निकाह अनुबंध में तलाक-ए-तफ़वीज़ की शर्त दर्ज कराने का हक़ रखती है जिसके ज़रिए उसे तलाक का समान अधिकार मिलता है। यह हक़ उसे साफ तौर से कुरान द्वारा दिया गया है। इसके मायने है 'तलाक का अधिकार सौंपना' और जिसमें पुरुष औरत को उसे तलाक देने का हक़ सौंप देता है। अगर औरत एक बोझनुमा शादी से आज़ाद होना चाहती है तो वह तलाक-ए-तफवीज़ के आधार पर इसका आगाज़ कर सकती है। अगर वह मुनासिब समझे तो एवज़ में अपने गुज़ारे की रकम का कुछ हिस्सा माफ कर सकती है। पर ये फैसला पूरी तरह उसकी मर्ज़ी और इख्तियारी पर है। मेरी नज़र में यह प्रथा कुरान द्वारा सुधार की दिशा में बढ़ने का एक तरीका है। लिहाज़ा इस्लामी निकाह व तलाक एक ही अनुबंध का हिस्सा हैं।

मुस्लिम महिलाओं के लिए तलाक एक ऐसा घिनौना मसला है जो उनका दमन करके उन्हें कमज़ोर बनाता है। पर कितनी औरतों को यह अंदाज़ा है कि 'तेहरा' तलाक इस्लाम के तहत हराम व गलत समझा जाता है। 'तेहरा' तलाक चलन की पुरज़ोर मुखालफ़त के बावजूद इसकी रोकथाम नहीं हो पाती है। कुरान में दर्ज इसकी लम्बी प्रक्रिया को तालीमकर्त्ता व मौलानाओं ने पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया है। वे एक बार तलाक कहने के बाद दूसरी बार तलाक कहने के बीच एक माह की अवधि तक रुकने व तीसरे तलाक कहने से पहले एक और मासिक चक्र की अवधि तक इंतज़ार नहीं करते। समझौते व निपटारा करने की कोई कोशिश नहीं दिखाते। तलाक, तलाक, तलाक कहकर तीस सेंकड के अंदर एक औरत की तकदीर लिख दी जाती है। कुरान व शरीयत दोनों इस तलाक को जायज़ करार नहीं देते, यह सच दुनिया की आंखों से ओझल रखा जाता है। अनपढ़ और बेगैरत मुल्ला चंद कागज़ के टुकड़ों पर दस्तखत करके छुटकारा पा जाते हैं जबकि इन कागज़ों की कोई कानूनी अहमियत नहीं है। और जब-जब कोई मजलूम औरत इसका शिकार होती है तब-तब इस्लाम की महिला विरोधी छवि गहरी स्याही से लिख दी जाती है।

तलाक की ही तरह ही बहुविवाह का चलन इस्लाम का एक और दुर्भाग्यपूर्ण व विकृत पहलू है। हर मज़हब की पैदाइश एक निश्चित संदर्भ में होती है और इस्लाम के साथ भी यही सच जुड़ा है। इस्लाम-पूर्व अरब में अनेक विवाह प्रथा थी। उस समय पुरुषों को औरतें विरासत में जानवरों व सामान की तरह दी जाती थीं। इस सड़े-गले व्यवहार से निजात पाने के लिए कुरान में पत्नियों की तादाद कम रखने की बात की गई जिससे आगे चलकर बहुविवाह प्रथा को खत्म किया जा सके। इसके अतिरिक्त कुरान में एक से अधिक पत्नी रखने के लिए यह शर्त भी दर्ज की गई कि सभी पत्नियों के साथ जीवन के हर पहलू में समान व्यवहार किया जाएगा। यह भी लिखा गया कि खुदा के

बंदों के लिए इस शर्त को पूरा करना नामुमकिन होगा, लिहाज़ा केवल एक ही पत्नी रखनी चाहिए। कुरान ने इस मुद्दे पर मुस्लिम समाज को साफ रास्ता दिखाया। पुरुषों द्वारा बहुविवाह करने की ख्वाहिश पर अंकुश लगाकर एक पत्नी रखने का सुझाव दिया गया है। परन्तु पंद्रह सदियां गुज़रने के बाद भी कुरान द्वारा बताए रास्ते पर आगे बढ़ने की जगह हम पीछे ही गड्ढे में और अधिक धंसते चले जा रहे हैं।

जहां तक मेहर का सवाल है वहां कुरान में पुरुषों की ज़िम्मेदारी व औरतों के हकूकों को लेकर कोई शुबहा नहीं है। मेरी सबसे पसंदीदा आयत सूरा-ए-बकर से है जिसमें दर्ज है कि अगर खाविंद अपनी पत्नी को छोड़ना चाहता है तो वह उससे कुछ भी वापस नहीं लेगा। फिर चाहे वह 'एक सोने की किंतार' ही क्यों न हो। इस पर उस औरत का हक़ है जो उनके अंतरंग संबंध के एवज़ में है। कुरान ने विस्तार से पुरुष को हिदायत दी है कि वह गुज़ारा भत्ता अदा करे खासकर अगर औरत उनके बच्चे की देखभाल कर रही हो तो उसकी हर ज़रूरत पूरी की जानी चाहिए। पुरुष को यह भी हिदायत दी गई कि वह पत्नी की दूसरी शादी में रुकावट पैदा न करे। इस बात से इस्लाम पूर्व अरब में औरतों के पुनर्विवाह की सच्चाई सामने आती है। उस दौर में तलाकशुदा, विधवा, जवान या बूढ़ी सभी औरतों के साथ पुनर्विवाह किया जाता था। खुद पैगम्बर साहब ने एक विधवा खदीजा, जो उम्र में सत्रह वर्ष बड़ी थी के साथ निकाह किया था और उनकी मौत तक वह उनकी इकलौती बीवी थी। खदीजा के इंतकाल के बाद उन्होंने अनेक बार विवाह किया व इसके लिए उन्होंने उम्रदराज़, गरीब व राजनैतिक सहयोगी औरतों का चुनाव किया। इस्लाम में तलाकशुदा या विधवा औरतों के साथ विवाह करने से इंकार नहीं किया जाता है।

तो अब मेरा सवाल यह है कि मज़हब पर बढ़ते पितृसत्तात्मक शिकंजे की मौजूदगी में मुस्लिम महिलाओं के लिए लैंगिक इंसाफ़ सुनिश्चित करने के लिए क्या किया जा सकता है? क्या निकाह अनुबंध संशोधित किया जाना चाहिए? क्या 'तेहरा' तलाक के चलन पर प्रतिबंध लगाना चाहिए? क्या बहुविवाह को नाजायज़ करार दिया जाना चाहिए? इन सभी विषयों पर अनगिनत बहसें की जा चुकी हैं। मुस्लिम व गैर मुस्लिमों सभी ने इसके लिए अनेक सुझाव भी पेश किए हैं।

मैं मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के कुरान के तर्जुमे और व्याख्याओं को पढ़ते-पढ़ते बड़ी हुई हूं। मेरी समझ की रोशनी कुरान की गहरी तालीम की देन है। पाकिस्तान के नामचीन चिंतक, डाक्टर मुबशिर हसन जिन्होंने इस्लाम की उदारवादी तहज़ीब पर बरसों काम किया है, के साथ चर्चाओं ने मेरी समझ को और पुख्ता बनाया है। इस सभी के आधार पर मैं यह मानती हूं कि अगर हम कुरान में दर्ज बातों से नज़दीकी इख्तियार कर लेंगे तो लैंगिक न्याय की राह हमें मज़हब के अंदर ही मिल जायेगी। सब कुछ मज़हब में ही मौजूद है, अल्फाज़, तरीके, रास्ते। सवाल तो यह है कि दुनिया व सरपरस्तों को ये सच कैसे समझाया जाए?

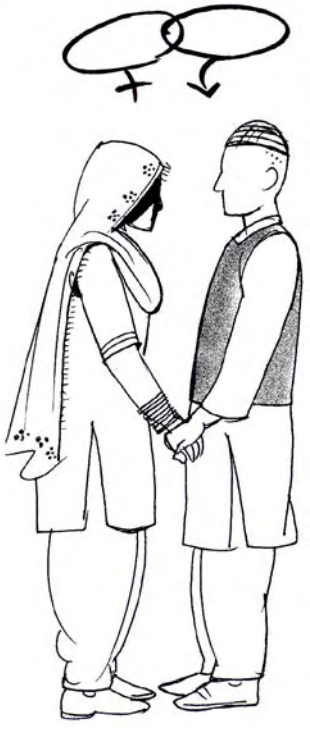

सूरा-ए-निसा खुदा की रहमत के दरवाज़े सभी नेक मर्दों व नेक औरतों के लिए समान तौर पर खोलता है। दोनों को एक ही इम्तिहान से गुज़र कर जाना होगा। दोनों के लिए कोई गुजांइश या अलहदा रास्ते नहीं हैं। कहा गया कि मर्दों में 'मोमिन' (नेक) बंदे होते हैं व औरतों में 'मोमिना'। जिस तरह 'सादिक' (सच्चे) मर्द होते हैं उसी तरह 'सादिका' औरतें भी होती हैं। 'पाकबाज़' मर्द व 'पाकबाज़' औरत दोनों यहीं हैं। मर्द व औरत के बीच फ़र्क़ नहीं होता। हमें मज़हब की इसी रूह को अपनाना और मानना होगा।

मौसम के बदलाव के साथ-साथ अल्फाज़ों और व्यवहार की दूरी बढ़ती जा रही है। आवाज़ें फिर चाहे वो कितनी छोटी या हल्की क्यों न हों बार-बार उठानी होंगी। इंसानी नस्ल को पार लगाने कोई मसीहा नहीं आयेगा।

–सईदा सैयदीन हमीद